

कलश है १०४ गाथा का कलश ।

मुक्त्वा लसत्त्वमधिसत्त्वबलोपपन्नः,

स्मृत्वा परां च समतां कुलदेवतां त्वम् ।

सज्ज्ञानचक्रमिदमङ्गं गृहाण तूर्ण-

मज्ञान-मन्त्रि-युत-मोह-रिपूपमर्दि ॥

योगीन्द्रदेव का आधार है । योगीन्द्रदेव का है न ?

हे भाई! ऐसा कहकर बात की है **स्वाभाविक बल सम्पन्न** ऐसा तू... यहाँ से शुरु किया है । प्रभु! तुझमें बल तो अनन्त है क्योंकि वीर्य नाम का गुण है तो अनन्त बल है । विश्वास नहीं, इसलिए इसे अनन्त बल दिखायी नहीं देता । मानना चाहिए । उसके सन्मुख होकर उस प्रकार से न माने, तब तक यह अनन्त बल है, ऐसा इसे ख्याल में, ज्ञान में नहीं आता । **स्वाभाविक बल सम्पन्न**... स्वाभाविक बल सम्पन्न, ओहोहो! एक-एक गुण में अनन्त-अनन्त वीर्य और वीर्य नाम का गुण भी भिन्न । वह अनन्त-अनन्त गुण को अनन्त बल सम्पन्न कह रहेवाला ऐसा जो यह तत्त्व... आहाहा !

वह **स्वाभाविक बल सम्पन्न** ऐसा तू.. आहाहा! कहते हैं कि बल तुझे बाहर से

लाना नहीं पड़ता। तू अन्दर में अनन्त बल सम्पन्न है। जिसे आत्मा कहते हैं, वह आत्मा अन्तर अनन्त वीर्य सम्पन्न है। अनन्त वीर्य कहो या बल कहो ? और अनन्त बल सम्पन्न है तो अनन्त गुण में प्रत्येक में उसका रूप भी है। रूप है अर्थात् ? आनन्द है, उसमें भी बल का रूप है; ज्ञान है, उसमें बल का रूप है। श्रद्धा है, उसमें बल का रूप है। श्रद्धा त्रिकाल, हों ! आनन्द-चारित्र्य है, उसमें भी बल का रूप है... उस प्रत्येक गुण में अनन्त बल का रूप है।

जिसमें परिणमन की पर्याय भी नहीं। आहाहा ! ऐसा जो आत्मा, उसके अनन्त गुण में अनन्त बल सम्पन्न है। एक-एक गुण अनन्त बल सम्पन्न है। आहाहा ! वह दूसरे गुण की भी जिसे अपेक्षा नहीं है। ऐसे अनन्त-अनन्त गुणों से भरपूर भगवान है। आहाहा ! वह सब आत्माएँ अन्दर भगवान है। पूर्णानन्द के नाथ, अनन्त गुण के बल सम्पन्न। बल सम्पन्न कहकर तो गजब किया है। आहाहा ! हमें क्यों नहीं ज्ञात होता ? परन्तु जो बल सम्पन्न है, उसे तू मानता नहीं। आहाहा ! अनन्त बल सम्पन्न भगवान आत्मा पर इसकी नजर नहीं है। पामर के ऊपर नजर है। वर्तमान पर्याय और राग पर इसकी नजर है। इसलिए... प्रभु ! जिसे निश्चय से आत्मा ही कहते हैं। ३८ गाथा में आता है कि निश्चय आत्मा तो यह ध्रुव है, वह निश्चय आत्मा है। पर्याय तो व्यवहार आत्मा है। आहाहा ! ऐसी बात है।

ऐसा जो भगवान आत्मा, अनन्त बल स्वाभाविक। स्वाभाविक अनन्त बल है, ऐसा कहते हैं। कुछ लाना नहीं पड़ता। शरीर में बल तो घटता है, आहार-पानी न ले तो ऐसा होता है। उसमें ऐसा नहीं है। शरीर तो कमजोर पड़ जाता है, बलवाला हो जाता है। बहुत प्रकार के आहार-पानी इत्यादि से, भस्म खाने से फिर बलवान हो जाता है। आहाहा ! ऐसा यह नहीं है। यह तो **स्वाभाविक बल सम्पन्न ऐसा तू...** आहाहा ! जिसका स्वभाव ही अनन्त वीर्य सम्पन्न है भगवान ! यह बात एक ही शब्द बैठना... आहाहा ! जहाँ है और जो है, वहाँ इसकी नजर जानी चाहिए। जहाँ नहीं, वहाँ नजर पड़ने पर, है वहाँ की नजर लुट जाती है। आहाहा ! यह क्या कहा ?

जहाँ प्रभु अन्दर ध्रुव है। अनन्त बल स्वाभाविक बल है, उसके अनन्त बल की बात क्या करना ? सैंतालीस शक्तियों में वीर्यगुण की तो ऐसी रचना कही है कि वह सर्व गुण की रचना करे, निर्मल रचना करे, उसका इतना बल है। सैंतालीस शक्ति में (यह बात

है) स्वरूप की रचना करे। अनन्त बल उसे कहते हैं और यह वीर्य अर्थात् शक्ति उसे कहते हैं, स्वरूप की रचना करे, उसे बल कहते हैं। राग की रचना करे उसे तो नपुंसक कहते हैं। आहाहा! कठिन बात। सुमनभाई! आहाहा! यह नौकरी का राग करे तो वह नपुंसकता है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : नपुंसकता के कोई पैसे देगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे कौन दे ? यह तो पैसे आनेवाले हों, वे आते हैं; जानेवाले हों, वे जाते हैं। परमाणु है, उन्हें जहाँ आना हो, वहाँ आते-जाते हैं। उसके कारण से उनकी क्रियावतीशक्ति एक समय में ध्रुवपना रहे और एक समय की पर्याय में परमाणु में षट्कारक से परिणमती जहाँ जैसे परिणमन होकर जाना हो, वहाँ जाए। कोई दे और ले, यह सब बातें व्यवहार की है। आहाहा! यह सब ज्ञात होता है, यह बात ऐसी नहीं है क्योंकि जिसके साथ तन्मय नहीं है, उसे जानता है—ऐसा कहना वह तो व्यवहार का असद्भूत कथन हुआ। आहाहा! यह क्या कहा ?

यह ज्ञात होता है कि यह... यह... यह... परन्तु उसमें ज्ञात होता है तो ज्ञान की पर्याय। यह कहीं ज्ञान की पर्याय उनमें जाती नहीं और वे पदार्थ जो शरीर, वाणी, यह सब है, वह कहीं आत्मा-ज्ञान में आते नहीं। ज्ञान, ज्ञान में रहकर स्व और पर के सामर्थ्यवाला स्व-पर प्रकाशक स्वयं से ही प्रकाशित होता है। पर के कारण वह प्रकाशित नहीं होता। आहाहा! निश्चय से तो ज्ञाता भी आत्मा, ज्ञेय भी आत्मा और ज्ञान भी आत्मा। ज्ञेय, परज्ञेय और ज्ञान यह, यह सब व्यवहार कथन है। आहाहा!

जिसकी सत्ता में ज्ञात होता है, जो ज्ञात होता है, उसकी सत्ता में ज्ञान नहीं है। जिसकी सत्ता यहाँ है, उसकी सत्ता में ज्ञात होता है। यह... यह... यह... यह... यह... यह इसकी पर्याय है। ज्ञान की पर्याय में वह ज्ञात होती है, वह ज्ञात होती है, (ऐसा) कहना, वह व्यवहार है। आहाहा! ऐसी बात! दो घड़ी, चार घड़ी निवृत्ति लेनी हो तो मिलती नहीं, ऐसा धन्धा-पानी में रुका हुआ रहे, उसे ऐसी बातें... आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसी ही बातें सुननेयोग्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो सत्य है। ऐई! आहाहा!

चैतन्य महाप्रभु अनन्त बल सम्पन्न जो शब्द उठाया है, उसमें पहला शब्द स्वाभाविक लिया है। **स्वाभाविक बल सम्पन्न...** इस शब्द में बहुत जोर है। आहाहा! स्वाभाविक अन्दर बल सम्पन्न प्रभु भगवान है। इसलिए वह बल सम्पन्न होने से अनन्त गुण में तो उसके बल का रूप है। इसलिए अनन्त गुण की रचना करे, वह वीर्य है। व्यवहाररत्नत्रय का राग आवे, इसलिए गुण की रचना होती है, ऐसा नहीं है। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम आवें, इसलिए यहाँ सम्यग्दर्शन या निर्मल पर्याय होती है, ऐसा नहीं है। स्वाभाविक बल सम्पन्न के कारण अनन्त गुण में उस बल का रूप है, उसके कारण उस स्वाभाविक की रचना होती है। राग से रचना नहीं होती। आहाहा! ऐसी वस्तु है। बालक हो या वृद्ध हो, वह तो शरीर की अवस्था है। भगवान आत्मा को कहीं बालक-वृद्धपना नहीं है। हाँ, उसे बालक कब कहा जाता है? कि पर को अपना माने, ऐसे मिथ्यात्व में है, उसे बालक कहा जाता है और अपने को जाने, उसे युवक कहा जाता है और स्वयं केवलज्ञान को प्राप्त करे, वह वृद्ध कहलाता है। आहाहा! बाकी शरीर की बाल अवस्था, युवान, वृद्धावस्था, वह सब जड़ की है।

यहाँ तो इतने शब्द में बहुत भरा है। **स्वाभाविक बल सम्पन्न...** आहाहा! इसमें शरीर में कुछ बल चाहिए हो तो कुछ खुराक ले, भस्म, अमुक की, अमुक की, हीरा की, माणिक की भस्म खाये। आहाहा! बत्तीस ग्रास का चक्रवर्ती का आहार होता है। एक-एक ग्रास करोड़ों रुपये की कीमत का, क्योंकि वह सब भस्म हीरा-माणिक की भस्म होती है, वह पूरे गर्म घी में उसे करके, गेहूँ का दाना डाले और उसका चूरा उसमें डाले, इसलिए गेहूँ घी पी जाए। उसकी रोटी बने। हीरा-भस्म की रोटी खाये और बत्तीस ग्रास करे। जिसका एक ग्रास छियानवें करोड़ सैनिक पचा न सकें। आहाहा! एक ग्रास, छियानवें करोड़ सैनिक नहीं पचा सकते, तथापि बत्तीस ग्रास ले और होवे क्षायिक सम्यग्दृष्टि। आहाहा!

मुमुक्षु : यह बात सच्ची होगी? गुरुदेव!

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे खबर नहीं। आत्मा का बल अलग है, इसका अलग है। आत्मा के बल के कारण शरीर में बल आवे, ऐसा कुछ है नहीं। शरीर की ताकत अलग है, प्रभु की ताकत अलग है। आहाहा! यह तो पुराण में चला है। सब राजाओं की सभा

भरी थी, उसमें चर्चा चली। भीम, अर्जुन, पाण्डव दूसरे राजाओं में चर्चा चली, इनमें बलवान कौन? इन राजाओं में बलवान कौन? कोई कहे कि भीम बलवान, कोई कहे अर्जुन बलवान, कोई कहे अमुक बलवान। किसी ने कहा भाई! दूसरा कोई नहीं परन्तु देखो, नेमिनाथ भगवान बैठे हैं। गृहस्थाश्रम में (अभी हैं), वे बलवान हैं। इस शरीर के, हों! आत्मा के नहीं। भगवान बैठे हैं, इसलिए हो गया...

श्रीकृष्ण उठे, तो पैर नीचे रखा, अब पैर उठा दो। श्रीकृष्ण पैर को उठाओ, ऐसा कहे, भगवान ने नीचे रखा। टँग गये परन्तु कोई ऊँचा नहीं कर सके। ऐसा तो भगवान के शरीर का बल। समझ में आया? यह तो प्रत्यक्ष बल दिखता है। वह नहीं था कैसा वह? घामा। चलती हुई दो मोटरें हों, उन्हें हाथ डालकर खड़ी रखे। चलती मोटर में हाथ डालकर खड़ी रखे, इतनी ताकत थी। वह मरते समय मक्खी यहाँ खड़ी हो, तो उस मक्खी को उड़ाने की शक्ति नहीं थी। ऐसे-ऐसे कर-करके महा मुश्किल से हाथ ऐसे होता था। जो मोटर को खड़ी रखता था, वह मक्खी को उड़ा नहीं सकता था। उस जड़ की शक्ति में इतनी विचित्रता है। समाचार-पत्र में आया था। (वह) सो रहा था, उसमें उस मक्खी को उड़ावे, ऐसा समाचार-पत्र में आया था। मक्खी को उड़ा नहीं सकता था। यहाँ कहते हैं कि उसके साथ आत्मा को सम्बन्ध नहीं है। आत्मा तो स्वाभाविक अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त विश्वास कर। बल सम्पन्न है। उसके जैसा बल अन्यत्र कहीं नहीं है। कोई शरीर में या कोई अन्य प्रकार की भस्म, दवा दे, इसलिए शरीर पुष्ट लगे और मजबूत तथा बलवाला लगे, यह कुछ नहीं है। आहाहा!

स्वाभाविक (अनन्त) बल सम्पन्न ऐसा तू आलस्य छोड़कर,... क्यों दिखता नहीं? कि आलस है इसलिए। कर्म है, इसलिए-ऐसा नहीं। आहाहा! **आलस्य छोड़कर,...** ऐसा नहीं कहा कि कर्म को घटने दे, घटे तो तेरा बल काम आवे, ऐसा नहीं। तू आलस को छोड़। आलस तू स्वयं... **आलस्य छोड़कर, उत्कृष्ट समतारूपी कुलदेवी का स्मरण करके,...** आहाहा! उत्कृष्ट समतारूपी, वीतरागतारूपी कुलदेवी। यह तेरे कुल की देवी वीतरागता... आहाहा! रागरहित वीतरागस्वभाव वह आत्मा के कुल की देवी वीतरागता है। राग उसका स्वभाव ही नहीं है। राग उसमें है ही नहीं। आहाहा!

उत्कृष्ट समतारूपी... उत्कृष्ट वीतराग। उत्कृष्ट वीतरागरूपी कुलदेवी को स्मरण

करके... आहाहा! अज्ञानमन्त्री सहित मोहशत्रु का नाश करनेवाले... आहाहा! अज्ञानमन्त्री है। मोहशत्रु राजा है। आहाहा! उस अज्ञानमन्त्री सहित मोहशत्रु का नाश करनेवाले... आहाहा! इस सम्यग्ज्ञानरूपी चक्र को शीघ्र ग्रहण कर। इस सम्यग्ज्ञानरूपी चक्र को, अन्दर ज्ञान को पकड़। जो ज्ञान ध्रुवस्वरूप परमात्मा अनन्त बल का धनी है, उसे पकड़। वह भी शीघ्र ग्रहण कर। सम्यग्ज्ञानरूपी चक्र को शीघ्र ग्रहण कर। जिस चक्र द्वारा अज्ञानमन्त्री सहित मोहशत्रु का नाश होता है। और शीघ्र ग्रहण कर। वहाँ शीघ्र ग्रहण करने में क्रमबद्ध कहाँ आया ?

वह क्रमबद्ध में ही शीघ्र ग्रहण आता है। कहने का आशय है कि ऐसा जो करे, अब उसे अल्प काल में ही केवलज्ञान होगा। आहाहा! समझ में आया ? पश्चात् तो प्रत्येक गाथा में तो विवाद उठाते हैं। शीघ्र ग्रहण कर। शीघ्र। यह तो जिस समय में जो पर्याय होनी है, उस समय में वह होनी है, होनी है। शीघ्रपना तो वहाँ... पर्याय में शीघ्रपना है, पुरुषार्थ शीघ्रपना होकर पर्याय को पलटा कर दूसरी पर्याय कर डालना। आहाहा! यह शीघ्र का अर्थ उस समय ऐसा जो करे, उसे अल्प काल में उसके अज्ञान, मोह का नाश होता है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

सम्यग्ज्ञानरूपी चक्र को शीघ्र ग्रहण कर। आहाहा! तेरा भगवान अन्दर... पहले बल लिया, पश्चात् ज्ञान लिया। फल में कुलदेवी को याद कर, वीतराग परिणति को याद कर। आहाहा! सम्यग्ज्ञानरूपी चक्र को शीघ्र ग्रहण कर। आहाहा! यहाँ तो उसके पुरुषार्थ से आत्मा हाथ आवे, ऐसा है - यह कहते हैं। कोई उल्टे-सीधे से नहीं। क्रमबद्ध है, उसमें उल्टा-सीधा नहीं। उसमें पुरुषार्थ नहीं - ऐसा नहीं है। उसमें ही अनन्त पुरुषार्थ है। एक समय की पर्याय है, उसे भी आगे-पीछे करना नहीं। आहाहा! और आत्मा में एक भाव नाम का गुण है। भाव नाम का गुण है। कि जहाँ वस्तु को पकड़ा, उस भाव के गुण के कारण एक पर्याय होती ही है। निर्मल पर्याय भावगुण के कारण होती ही है। सैंतालीस शक्ति में आता है। भाव-भाव।

मुमुक्षु : भाव, अभाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाद में, पहला भाव।

वस्तु जहाँ अनन्त स्वाभाविक बल है, ऐसा जो ज्ञान और आनन्द को पकड़ा, तो उस समय जो भावगुण के कारण निर्मल पर्याय उस समय में होनेवाली थी, वह हुई। अभाव के कारण नहीं, कर्म के कारण नहीं, राग के कारण नहीं। अपना वह अभाव नाम का एक गुण है, उसके कारण रागरहित-अभावरूपी परिणमन उसका हुआ। राग का अभाव हुआ, इसलिए नहीं। परन्तु यहाँ अभाव नाम का गुण है, इससे राग के अभावरूप परिणमन हुआ। आहाहा! गजब बात है न ?

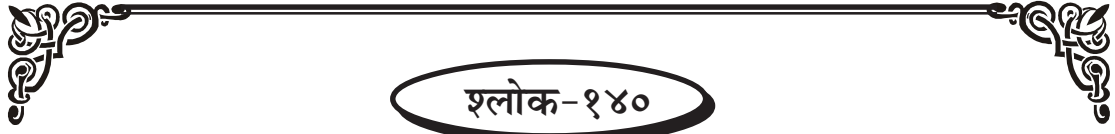
मुमुक्षु : यह बात शीघ्र पकड़ में आवे ऐसी नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषा तो सादी है। संसार की बहियों को कैसे पकड़ते हैं सब ? ऐई! सुमनभाई! बहियाँ सूक्ष्म होवे तो ब्याज निकाले तो ऐसा है, वैसा है, अमुक है, अमुक है। प्रतिदिन का ब्याज निकालकर वापस चढ़ावे। एक टके के ब्याज में पाँच लाख दिये हैं। एक दिन का ब्याज यह चढ़ाओ। यह ब्याजसहित वापस दूसरे दिन ब्याज। यह वहाँ बनिया चक्रवृद्धि ब्याज निकालता है। यहाँ चक्रवृद्धि ब्याज निकालना हो तो नहीं मिलता। आहाहा!

यहाँ तो द्रव्य की महिमा है। उस द्रव्य की दृष्टि हुई, यह उसमें भाव नाम का गुण है, इससे वह पर्याय करना नहीं; पर्याय होगी ही। आहाहा! और अभाव भी रागादि के अभावरूप उस राग के कारण से नहीं, अपना अभाव गुण है, उसके कारण से भाव का अभाव होगा ही। आहाहा! भाव का अभाव अर्थात् पर के भाव का अभाव, हों! पश्चात् भाव-अभाव। वापस तीसरा गुण यह है कि भाव है, उसका स्वभाव अभाव होगा। दूसरे समय में उसका अभाव होगा, ऐसा उसका गुण है। उसे दूसरे समय में अभाव करूँ तो होगा, ऐसा नहीं है। आहाहा!

आत्मा में भाव-अभाव नाम का एक गुण है कि जो भाव वर्तमान पर्याय निर्मल वर्तती हो, उसे छोड़कर फिर अभाव जो पर्याय नहीं है, वह आयेगी। उसमें भाव-अभाव नाम का गुण है। है, उसे छोड़कर नहीं है, वह आयेगी। नहीं है, वह आयेगी ही। आहाहा! अभाव भाव। जिसका अभाव है, ऐसा भाव वहाँ आयेगा ही। अभाव का भाव आयेगा ही। भाव का अभाव होगा, पश्चात् अभाव अर्थात् उस भविष्य की पर्याय का वर्तमान में अभाव है। उस अभाव का भाव होगा। भाव का अभाव होगा और अभाव का भाव होगा। आहाहा! इतना अब क्रमबद्ध क्या करना ? आहाहा! ऐसा उसका स्वरूप है।

भाव, अभाव, भावअभाव, अभावभाव, भावभाव, अभावअभाव। यह पर्याय जो द्रव्य को पकड़ा, प्रभु को उसकी जो पर्याय है निकली वह भावभाव। है... है... है... उस प्रकार की आया करेगी और अभाव-अभाव। जो नहीं है, उस नहींपने का ही अभाव रहा करेगा। आहाहा! जरा सूक्ष्म है। कहाँ तक फिर सूक्ष्म-सूक्ष्म करना? आहाहा! यह यहाँ कहते हैं, अरे! सम्यग्ज्ञानरूपी चक्र को... चढ़ा। सम्यग्ज्ञानरूपी चक्र को... चढ़ा। स्व को पकड़कर जो ज्ञान होता है, वह सम्यग्ज्ञान है। उस चक्र को शीघ्र ग्रहण कर। शीघ्र ग्रहण कर, जिससे अज्ञानमन्त्रीसहित मोह का नाश होगा। अज्ञानमन्त्रीसहित मोह का नाश होगा। अरे रे! ऐसी बातें! आहाहा! यह कलश हुआ। आधार था।



श्लोक-१४०

और (इस १०४वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं) :—

(वसंततिलका)

मुक्त्यङ्गनालिमपुनर्भवसौख्यमूलं,
दुर्भावनातिमिरसंहतिचन्द्रकीर्तिम् ।
सम्भावयामि समता-मह-मुच्चकैस्तां,
या सम्मता भवति संयमिना-मजस्रम् ॥१४०॥

(हरिगीतिका)

मुक्तिरूपी अंगना के लिये भ्रमर समान जो।
दुर्भावनारूपी तिमिर को शशि-प्रकाश समान जो ॥
संयमी को नित्य संमत, मोक्ष सुख का मूल जो।
अत्यन्त भाता हूँ सदा मैं सखी समता को अहो ॥१४०॥

[श्लोकार्थः] जो (समता) मुक्तिरूपी स्त्री के प्रति भ्रमर समान (रत) है, जो मोक्षसौख्य का मूल है, जो दुर्भावनारूपी तिमिरसमूह को (नष्ट करने के लिए) चन्द्र

के प्रकाश समान है और जो संयमियों को निरन्तर सम्मत है, उस समता को मैं अत्यन्त भाता हूँ ॥१४०॥

श्लोक -१४० पर प्रवचन

और (इस १०४वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं):— उस श्लोक का तो आधार दिया था। अब टीकाकार स्वयं दो श्लोक कहते हैं। यह धीमे-धीमे-धीरे-धीरे समझने की बात है। यह कोई वार्ता कथा नहीं है। आहाहा! यह तो सर्वज्ञ परमात्मा परम गुरु का इतिहास है। आहाहा! सर्वज्ञदेव परम गुरु ने कही हुई बात का यह इतिहास है कि ऐसा कहा है और ऐसा होता है और ऐसा होगा। आहाहा! निवृत्ति लेनी चाहिए। प्रवृत्ति में से बाहर निकलना और उसमें झुकना पड़े। सूक्ष्म बातों में... आहाहा! १४० कलश।

मुक्त्यङ्गनालिमपुनर्भवसौख्यमूलं,
दुर्भावनातिमिरसंहतिचन्द्रकीर्तिम् ।
सम्भावयामि समता-मह-मुच्चकैस्तां,
या सम्मता भवति संयमिना-मजस्रम् ॥१४०॥

जो (समता)... रूपी। आहाहा! समता कहो, वीतरागी पर्याय कहो, शुद्धोपयोग कहो, आत्मा का स्वास्थ्य कहो। आत्मा की जो वीतरागी पर्याय है, उसे समता कहो, शुद्धोपयोग कहो, चित्त निरोध कहो... आहाहा! यह भिन्न-भिन्न भाषा का अर्थ है। स्वास्थ्य कहो। स्वस्थ - स्व-अपने में रहना है, वह शुद्धोपयोग है। आहाहा! यह शुद्धोपयोग मुक्ति सुन्दरी की सखी है। इसमें सुधारा है। पुराने में होगा। उसमें-पुराने में मुक्तिरूपी स्त्री के प्रति भ्रमर समान है, ऐसा लिखा है। नयी में स्पष्ट है।

जो (समता)... आहाहा! जो पुण्य और पाप के विकल्प / रागरहित समता। चैतन्य भगवान वीतरागमूर्ति है, उसके आश्रय से होनेवाली वीतरागदशा, उसे यहाँ शुद्धोपयोग और समता कहते हैं। आहाहा! जो (समता) मुक्ति सुन्दरी की सखी है। मोक्षरूपी सुन्दर स्त्री, उसकी वह मैत्री है। उसकी सखी, सहेली है। आहाहा! कि जिसे समता प्रगट हुई

है, उसे अल्पकाल में मुक्तदशा होनेवाली ही है। आहाहा! जिसे शुद्धोपयोग प्रगट हुआ, शुभ-अशुभ विकल्प के राग से रहित होकर... आहाहा! शुद्धोपयोग कहो, समता कहो, वीतरागता कहो, स्वास्थ कहो, चित्त निरोध कहो। आहाहा! वह **मुक्ति सुन्दरी की सखी** है। वीतरागता-शुद्धोपयोग, वह मुक्तिसुन्दरी की सखी है। इसमें राग को-व्यवहार को कहीं नहीं रखा। व्यवहार से होता है, व्यवहार साधक है और निश्चय साध्य है—ऐसा कुछ नहीं कहा। जयसेनाचार्य में साधक, ऐसा बतलाया है। आरोपित साधक है, ऐसा आरोपित बतलाया है। अब उन लोगों को वह ठीक पड़ता है।

मुमुक्षु : परन्तु व्यवहार शब्द कब कहलाये कि उसका अभाव होवे तब।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो ऐसा माने नहीं। यह तो व्यवहार करने से निश्चय होता है। सवेरे नहीं आया था? व्यवहार से निश्चय प्राप्त होता है। वह तो व्यवहार था, उसका अभाव करके हुआ, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! सवेरे समयसार में था। व्यवहार से निश्चय प्राप्त होता है, देखो! आहाहा! उसका तो अभाव करके। उसका लक्ष्य जब तक है, तब तक तो अन्तर में नहीं जाया जाता। शुभराग का जब तक दया, दान, व्रत, भक्ति आदि, अरे! सूक्ष्म राग, गुण-गुणी के भेद का सूक्ष्म राग है, तब तक अन्दर निर्विकल्प दृष्टि नहीं होती। आहाहा! और निर्विकल्प दृष्टि बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र नहीं होता। आहाहा! ऐसा है, प्रभु! भाषा सादी परन्तु वस्तु तो जैसी हो, वैसी होगी न? आहाहा!

जो मोक्षसौख्य का मूल है,... यह वीतरागता मोक्षसौख्य का मूल है। **मुक्ति सुन्दरी की सखी है...** एक बात। और **जो मोक्षसौख्य का मूल है,...** अनन्त सुख जो मुक्ति का, उसमें वीतरागता, समता जो शुभाशुभभावरहित वीतरागदशा, वह मोक्षसौख्य का मूल है। मोक्ष के आनन्द के सुख का वह मूल है। आहाहा! **जो दुर्भावनारूपी तिमिरसमूह को (नष्ट करने के लिए)...** वह समता कैसी है? वीतरागपर्याय कैसी है? आहाहा! तिमिर-अज्ञान-अन्धकार। विपरीत भावना विकल्प से लाभ होगा, ऐसे **तिमिरसमूह को (नष्ट करने के लिए) चन्द्र के प्रकाश समान है...** जैसे चन्द्र का प्रकाश बढ़े, वैसे समुद्र का पानी बढ़ता है। ज्वार बढ़ता है। भरती (ज्वार का गुजराती शब्द) को क्या कहते हैं? बाढ़।

जैसे चन्द्रमा बढ़ता है, वैसे ज्वार बढ़ता है। पूर्णिमा से ओट आती है, ऐसा कुदरत का नियम है। चन्द्र का प्रकाश जैसे पूर्ण होता है तो समुद्र में ज्वार आता है। इस प्रकार **चन्द्र के प्रकाश समान है...** आहाहा! वह दुर्भावनारूपी तिमिरसमूह को (नष्ट करने के लिए)... कौन? समता, और **चन्द्र के प्रकाश समान...** जितनी वीतरागता है, उतना गुण बढ़ता है। जितनी वीतरागता, उतने अनन्त गुणों को प्रकाश बढ़ता है। चन्द्रमा के कारण जैसे... चन्द्रमा तो निमित्त है। उसके कारण कहीं समुद्र.. समुद्र तो स्वयं के कारण से है परन्तु वह तो निमित्त है। चन्द्रमा के कारण समुद्र में ज्वार आता है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा!

इसे और उसे क्या सम्बन्ध है? परन्तु ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है कि जहाँ चन्द्र का प्रकाश बढ़ता है तो समुद्र में ज्वार आता है। इसी प्रकार यहाँ मोक्षसौख्य का मूल ऐसा वीतरागभाव, वह **चन्द्र के प्रकाश समान है और जो संयमियों को निरन्तर सम्मत है...** समकित सहित जो संयमी है। आहाहा! सम + यम है न? सम - सम्यग्दर्शनपूर्वक यमी है। यम - यम। यह अपने आया था। यम - यातनाशील ऐसा जो यम उसके नाश करनेवाला है, यम अर्थात् संयम। यातना अर्थात् पीड़ा, दुःख करनेवाला ऐसा मोह... उसका नाश करनेवाला है - यम। यम, यम का नाश करनेवाला है। सवेरे आया था। समझ में आया? अरे रे! ऐसा सूक्ष्म!

दया पालने का कहे, व्रत का कहे तो समझ में भी आये, रात्रिभोजन नहीं करना, यह तो... चतुर्विध आहारत्याग... छह परबी कन्दमूल नहीं खाना, छह परबी ब्रह्मचर्य पालना, ऐसा कहे तो समझ में आये। ठीक करते हैं। इसमें क्या हुआ? वह तो जड़ है। राग मन्द होवे तो पुण्य होता है। बाकी यह तो शरीरादि जड़ की क्रिया है। इस शरीर को मैं कर नहीं सकता। शरीर से विषय-सेवन नहीं कर सकता। यह भी एक मिथ्यात्व अभिमान है। आहाहा! और शरीर से मैं विषय-सेवन कर सकता हूँ, स्पर्श कर सकता हूँ, यह मिथ्यात्व है और शरीर को मैंने इन्द्रिय के विषय से जाते हुए रोक रखा है... आहाहा! गजब बात है। शरीर से इन्द्रिय के विषय में जाने से मैंने रोक रखा है, यह भी एक मिथ्यात्व है। शरीर की क्रिया को रोकना और छोड़ना, वह कहीं आत्मा के अधिकार की बात नहीं है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **चन्द्र के प्रकाश समान है और जो संयमियों को निरन्तर सम्मत है...** मुनियों को तो तत्काल सम्मत है और वीतरागता होती है। चौथे गुणस्थान में अभी,

पाँचवें गुणस्थान में थोड़ी वीतरागता होती है। संयमियों को तो बहुत वीतरागता... आहाहा! वीतराग के झूले में झूलते हैं। आहाहा! **संयमियों को निरन्तर सम्मत है,...** निरन्तर अर्थात् दूसरे, चौथे और पाँचवें गुणस्थान में हैं उन्हें संयम आने में देरी लगती है। वीतरागता आने में देरी लगती है परन्तु **संयमियों को निरन्तर सम्मत है,...** संयमियों को तत्काल वीतरागता आती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? बात बात में कठोर बात। वीतरागमार्ग ऐसा है, भाई! अभी तो सब गड़बड़ कर डाली है। यह तो वीतराग त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव का कथन है। उसे मुनि दुनिया के लिये प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! पहले कह गये हैं न? हम टीका करनेवाले कौन? यह तो गणधर से और आचार्यों से परम्परा से टीका चली आयी है। वह यहाँ कही है। मैं तो निमित्तमात्र हूँ। आहाहा! निमित्त का अर्थ कि मैं उसका कर्ता नहीं। आहाहा!

जो समता, वीतरागता। शुभ-अशुभ राग से रहित। समता, स्वास्थ्य, वीतरागता, यह **दुर्भावनारूपी तिमिरसमूह को (नष्ट करने के लिए) चन्द्र के प्रकाश समान है...** जितने प्रमाण में वीतरागता प्रगट होती है, उतने प्रमाण में राग का अभाव होता जाता है। आहाहा! जितने प्रमाण में वीतराग पर्याय के चन्द्रमा का प्रकाश बढ़ता जाता है, उतना-उतना राग के अंश का नाश होता जाता है। आहाहा! समयसार में आया है न? विज्ञानघन होता जाता है। जितना ऐसा होता जाए, वैसे विज्ञानघन होता जाता है। विज्ञानघन होता जाता है, उतना ऐसे स्थिर होता जाता है। आहाहा! समयसार की ७४वीं गाथा में आता है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म।

संयमियों को निरन्तर सम्मत है,... जो मुनि हैं... आहाहा! नग्न मुनि हैं, दिग्म्बर मुनि हैं, उन्हें मुनि कहते हैं। वस्त्रवाले वे मुनि, मुनि हैं ही नहीं। वस्त्र का टुकड़ा रखकर मुनि माने, मनावे... सूत्रपाहुड़ की १८ गाथा में स्पष्ट कहा है - निगोद में जाएगा। लहसुन और प्याज में उत्पन्न होगा। आहाहा! ऐसी बात है। आचार्य, उपाध्याय और सब साधु। यहाँ तो कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं, एक टुकड़ा रखकर मुनिपना माने तो वह मुनिपने की दशा है ही नहीं। क्योंकि वस्त्र ग्रहण की ममता है, इसलिए वह मुनिपना नहीं है। मुनिपना नहीं है, नवतत्त्व की श्रद्धा की विपरीतता है। उसमें नवतत्त्व की श्रद्धा की विपरीतता है। आहाहा! क्योंकि एक तो जीव का आश्रय जितना लिया, उतना आश्रय राग है, इसलिए उतना आश्रय कम हुआ। वस्त्र-पात्र राग है, उतना आश्रय कम। वस्त्र-पात्र न हो, तब आश्रय विशेष होता है। राग उसमें होवे तो आश्रय कम होता है। अजीव का संयोग जितना

चाहिए, उतना नहीं, उससे अधिक है; इसलिए अजीब की भूल हुई। अन्दर पुण्य-पाप में भी भूल हुई। ऐसा कहते हैं कि थोड़ा संयोग है और उसका शुभराग है, उसे वीतरागता मानता है, उससे कल्याण मानता है। पुण्य में भी भूल है, पाप में भी भूल है, आस्रव में भूल है, संवर में भूल है, निर्जरा में भूल है, मोक्ष में भूल है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

इसी प्रकार यह नग्न है, वे सब साधु हैं, ऐसा भी नहीं है। नग्नपना अनन्त बार लिया है। अनन्त बार नग्नपना और पंच महाव्रत अनन्त बार लिये हैं। वह तो शुभभाव है, वह कहीं धर्म नहीं है। यहाँ क्या कहना है? **संयमियों को निरन्तर सम्मत है,...** इसका अर्थ चलता है। चौथे गुणस्थान में और पाँचवें गुणस्थान में वीतरागता मानी है, परन्तु उन्हें प्रगटता में देरी लगती है। आहाहा! और मुनि को है, वह निरन्तर सम्मत है। सातवाँ (गुणस्थान) आवे, तुरन्त वीतरागता आती है। आहाहा!

उस समता को... आहाहा! मुनिराज स्वयं कहते हैं। पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि (कहते हैं)। **उस समता को मैं अत्यन्त भाता हूँ।** मैं तो वीतरागभाव को भाता हूँ। आहाहा! पंच महाव्रत के परिणाम आते हैं परन्तु उन्हें कहीं भाता नहीं हूँ। आहाहा! **समता को मैं अत्यन्त भाता हूँ।** भाषा देखी? अकेला भाता हूँ, ऐसा नहीं कहा। **मैं अत्यन्त भाता हूँ।** ऐसा कहकर अपनी मुनिदशा की वीतरागता प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! जीव का जैसा वीतरागस्वभाव है, वैसा वीतरागी अंश चौथे (गुणस्थान) में प्रगट होता है और मुनि को तो वीतरागता तत्काल विशेष प्रगट होती है। इसीलिए वह मुक्ति सुन्दरी की सखी है। अल्प काल में उन्हें केवलज्ञान होगा, आहाहा! मति और श्रुतज्ञान यथार्थ हुआ। धवल में ऐसा कहते हैं कि यह मतिज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है। ओहोहो! आहाहा! उसमें मतिज्ञान बुलाता होगा? पाठ ऐसा है। मतिज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है। बुलाता है अर्थात् अब उसे नजदीक में है।

जिसे मतिज्ञान सम्यक् हुआ, उसे केवलज्ञान अत्यन्त निकट में है। आहाहा! श्रीमद् ने तो ऐसा भी कहा है कि सम्यग्दर्शन होकर पश्चात् तू ऐसा कहे कि हमें अब भवभ्रमण करना है। हमारे यह नहीं चलता, भवभ्रमण अब नहीं होगा। ऐसा है, आहाहा! सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान जहाँ प्रगट हुआ, उसे अब भवभ्रमण नहीं है। तू इनकार कर कि अब केवलज्ञान नहीं चाहिए। नहीं चलेगा, ऐसा लिया है।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन बलजोरी से खींचकर ले जाता है मोक्ष में ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा उसका स्वरूप ही है। सम्यग्दर्शन से पूर्ण आत्मा को जोर से पकड़ा है, इसलिए उसकी पर्याय बढ़ती ही जाती है। बढ़ जाने पर अल्प काल में केवलज्ञान हुए बिना नहीं रहेगा। आहाहा! ऐसा है। भाव-भाव। भाव-भाव। भाव है, उस भाव को... आहाहा! वीतराग के वचन बहुत सूक्ष्म हैं। लोगों को सुनने को मिले नहीं। बेचारे कुछ न कुछ रुक गये हैं। धर्म एक ओर पड़ा रहा। आहाहा! **उस समता...**

मुमुक्षु : मति-श्रुत को केवलज्ञान कितना दूर होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूर कुछ नहीं। वह तो किसी को अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान होता है, किसी को एकाध-दो भव करना पड़ता है। परन्तु इस अनन्त काल के हिसाब से वे दो भव गौण कहे जाते हैं। जहाँ अनन्त भव हुए... आहाहा! उसमें दो-चार भव या पन्द्रह भव... श्रीमद् ने पन्द्रह कहे हैं। सम्यक्त्व होने के बाद पन्द्रह भव होते हैं। आगे न बढ़े तो (होते हैं)। आहाहा!

उस समता को मैं अत्यन्त भाता हूँ। अकेला भाता हूँ, ऐसा नहीं। **अत्यन्त भाता हूँ।** आहाहा! मुनि की दशा तो वीतरागभाव की ही होती है। वीतरागभाव की दशा और वीतरागभाव की ही भावना। वीतरागभाव का ही घोलन। आहाहा! ऐसी मुनिदशा। यह कहा। **अत्यन्त भाता हूँ** का अर्थ यह किया। १४० कलश हुआ।

श्लोक-१४१

(हरिणी)

जयति समता नित्यं या योगिनामपि दुर्लभा,
निजमुखसुखवार्धिप्रस्फारपूर्णशशिप्रभा ।
परम-यमिनां प्रव्रज्यास्त्रीमनःप्रिय-मैत्रिका,
मुनिवरगणस्योच्चैः सालङ्क्रिया जगतामपि ॥१४१॥

(वीरछन्द)

निजसन्मुख सुखसागर ज्वार-हेतु जो चन्द्रप्रभा-सम है ।
 परम संयमी जन की दीक्षारमणी मन को प्रिय सखि है ॥
 मुनि समूह अथवा त्रिलोक का जो अतिशय आभूषण है ।
 योगिजनों को भी दुर्लभ जयवन्त सदा यह समता है ॥१४१ ॥

[श्लोकार्थः] जो योगियों को भी दुर्लभ है, जो निजाभिमुख सुख के सागर में ज्वार लाने के लिए पूर्ण चन्द्र की प्रभा (समान) हैं, जो परम संयमियों की दीक्षारूपी स्त्री के मन को प्यारी सखी है तथा जो मुनिवरों के समूह का तथा तीन लोक का भी अतिशयरूप से आभूषण है, वह समता सदा जयवन्त है ॥१४१ ॥

श्लोक -१४१ पर प्रवचन

१४१ वाँ (कलश) ।

जयति समता नित्यं या योगिनामपि दुर्लभा,
 निजमुखसुखवार्धिप्रस्फारपूर्णशशिप्रभा ।
 परम-यमिनां प्रव्रज्यास्त्रीमनःप्रिय-मैत्रिका,
 मुनिवरगणस्योच्चैः सालङ्क्रिया जगतामपि ॥१४१ ॥

आहाहा ! जो योगियों को भी दुर्लभ है,... वीतरागता योगियों को भी दुर्लभ है । समकितसहित की वीतरागता... आहाहा ! योगियों को भी दुर्लभ है,... आहाहा ! बोधिदुर्लभ भावना में ऐसा आता है न ? समकित बोधि दुर्लभ है । इसी प्रकार यह भी दुर्लभ है । समता अर्थात् वीतरागता । जो निजाभिमुख सुख के सागर में ज्वार लाने के लिए पूर्ण चन्द्र की प्रभा (समान) हैं,... आहाहा ! अन्दर की वीतरागता । शुभ और अशुभभावरहित, शुद्ध चैतन्य का उपयोग, शुद्धोपयोग, वीतरागभाव, समताभाव... आहाहा ! जो निजाभिमुख... निज के सन्मुख, अभिमुख है । आत्मा पूर्णानन्द का नाथ है, उसके अभिमुख - सन्मुख । सुख के सागर में वह निजाभिमुख सुख के सागर में ज्वार लाने के लिए... उस सुख के समुद्र में-पर्याय में ज्वार लाने के लिये । भाषा ।

निजाभिमुख सुख के सागर में... अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद तो चौथे गुणस्थान

से आया है। यहाँ तो मुनि को अतीन्द्रिय आनन्द... आहाहा! वह सुख के सागर में ज्वार लाता है। आहाहा! पर्याय में सुख का सागर डोलता है, झूलता है, विशेष प्रगट होता है। आहाहा! ऐसा मुनिपना है। **पूर्ण चन्द्र की प्रभा (समान) हैं...** सागर में ज्वार लाने के लिये पूर्ण चन्द्रमा की प्रभा समान। पूर्ण चन्द्रमा होता है तो समुद्र में ज्वार आये बिना रहता ही नहीं। इसी प्रकार स्वसन्मुख उस सुख का सागर, उसे पर्याय में **ज्वार लाने के लिए पूर्ण चन्द्र की प्रभा (समान)...** समता है। समता अर्थात् रागरहित समता। पुण्य और पाप का भाव विषमता है। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम भी विषमता है। वह समता नहीं है। आहाहा! उससे विरुद्ध पूर्ण चन्द्र की प्रभा समान वीतरागता है। आहाहा!

जो परम संयमियों की... परम संयमी सन्तों की... आहाहा! **दीक्षारूपी स्त्री के मन को प्यारी सखी है...** दीक्षारूपी स्त्री के मन को प्रिय सखी है। आहाहा! मुनि की दीक्षा हुई, वहाँ वीतरागता होती ही है। उसकी सखी है। साथ में होती है। अन्तर से जहाँ मुनिपना लिया। अन्तर से, हों! मात्र बाहर से ले, वह मुनि नहीं है। नग्नपना अकेला मुनिपना नहीं है। वस्त्रवाले तो मुनि हैं ही नहीं। कभी अज्ञानमय। वस्त्र छोड़कर नग्न हो, वह भी कहीं मुनि नहीं है। अन्तर की **परम संयमियों की दीक्षा...** वीतरागपने की जो दीक्षा थी। आहाहा!

जयधवल में तो ऐसा भी कहा है। मुझे तो शुद्धोपयोग में रहना, यह प्रतिज्ञा की है। शुद्धोपयोग में रहना, ऐसी मैंने प्रतिज्ञा की थी और यह पंच महाव्रत के परिणाम आये, वह मेरे प्रत्याख्यान का भंग हो गया। आहाहा! समझ में आया? मुझे तो शुद्धोपयोग में रहना अर्थात् वीतरागभाव में रहना है, यह मैंने प्रतिज्ञा की है। उसमें मैं नहीं रह सका, महाव्रत के परिणाम आये... आहाहा! व्यवहार समिति, गुप्ति आयी, भक्ति आयी; इसलिए मेरी प्रतिज्ञा में भंग पड़ा। फिर प्रतिज्ञा लेता हूँ। आहाहा! शुभ वीतरागता के अतिरिक्त मुझे कुछ दूसरा नहीं है। ऐसी वीतरागतासहित की मृत्यु समाधिमरण है। आहाहा! वह पच्चखाण करता है। मरण के समय ऐसे पच्चखाण करता है कि वह पंच महाव्रत का प्रमादभाव था, उसमें-अप्रमाद में रहना, वीतरागता में रहना ऐसी मैंने... उसमें यहाँ आकर इतना दोष लग गया, इसलिए फिर से प्रत्याख्यान करता हूँ। आहाहा! बातें सुनना कठिन पड़ती हैं। आहाहा! यशपालजी! जयधवल में है। क्या कहलाता है वह? जयधवल। जयधवल में ऐसा लेख है।

धवल, महाधवल और जयधवल । कि मुझे तो उपयोग को शुद्ध रखना है । शुद्ध उपयोग में रहना है, वीतरागरूप से रहना है, यह मैंने प्रतिज्ञा की थी । वह मैं शुद्ध उपयोग में रह नहीं सका और पंच महाव्रत आदि के परिणाम आये, इसलिए मेरी प्रतिज्ञा भंग हुई । अब मैं पण्डितमरण में वैराग्यवाला हूँ । वह प्रतिज्ञा लेता हूँ । शुद्ध उपयोग की प्रतिज्ञा । शुद्ध उपयोग वही मेरा स्वरूप है और मेरा संयम है । आहाहा ! है ?

जो परम संयमियों की दीक्षारूपी स्त्री के मन को प्यारी सखी... अर्थात् क्या कहा ? मुनि जहाँ दीक्षा लेते हैं तो उन्हें वीतरागता ही होती है । सच्ची दीक्षा जो है, उसे वीतरागता ही होती है । आहाहा ! है उसमें ? परम संयमियों की दीक्षारूपी स्त्री के मन को... समता अर्थात् वीतरागता प्यारी सखी है... वीतरागता तो उसकी प्रिय सखी है । आहाहा ! सन्तों की वाणी, दिगम्बर सन्तों की वाणी भी अलग प्रकार की है । पूरी दुनिया से अन्तर है । नागा बादशाह से आघा । उन्हें बादशाह की पड़ी नहीं । कौन मानेगा, कौन कहेगा ? उसके घर में रहा । मार्ग तो यह है । आहाहा !

तथा जो मुनिवरों के समूह का तथा तीन लोक का भी अतिशयरूप से आभूषण है,... वीतरागता । समता अर्थात् वीतरागता । वह मुनिवरों के समूह का... जितने मुनि हैं, उन सबका । वीतरागभाव, वह उनका आभूषण है और तीन लोक का... आहाहा ! यह मुनिपना... यशपालजी ! आहाहा ! यह तो थोड़ा कुछ छोड़े तो मुनिपना ले लो, व्रत ले लो, व्रत ले लो । आहाहा ! मुनिवरों के समूह का तथा तीन लोक का भी अतिशयरूप से आभूषण है,... आहाहा ! वीतरागता तो अतिशयरूप से आभूषण है, वह समता सदा जयवन्त है । वह समता वर्तती है, ऐसा कहते हैं । जयवन्त है अर्थात् वह वीतरागता मुझे वर्तती है । वह जयवन्त वर्तती है ।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव)